मीडिया की अपनी विचारधारा का सवाल

इन दिनों विचारधारा की बात फिर सतह पर है। अभी दिल्ली के चुनाव में भी यह बात लोगों ने बार-बार दोहराई कि किसकी विचारधारा है और किसकी विचारधारा का कोई पता ही नहीं है। साध्वी निरंजन ज्योति ने कहा कि आप की कोई विचारधारा ही नहीं है। कुछ समय पहले ही राहुल गांधी ने कहा था, भाजपा की विचारधारा ने ही एक विचार की हत्या और देश का विभाजन किया। उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस गांधी-नेहरू-पटेल की विचारधारा पर चलती है। नितीश, लालू ने बिहार में तथा मुलायम और मायावती ने उत्तरप्रदेश में जातीय पिछड़े लोगों को आगे लाने को समाजवादी विचार से जोड़ा। केरल तथा बंगाल के विकास को साम्यवादी विचार का परिणाम बताया गया। इस सबका संभवत: तात्पर्य यही है कि विकास का सीधा संबंध विचारधारा से है। विचारधारा है तो विकास है, विचारधारा नहीं है तो विकास नहीं होगा। इधर, बहुत से लोगों का मानना है कि गत अड़सठ वर्षों से भारत में हुआ विकास तो इस बात की पुष्टि नहीं करता है। कांग्रेस के राज्य में गांधी-नेहरू या पटेल की विचारधारा कहां स्पष्ट होती है? कुछ राज्यों में साम्यवादी और समाजवादी विचारधारा के लोगों ने राजकाज किया। वहां भी उन विचारधाराओं के आधार पर विकास होना चाहिये था, पर नहीं हुआ। भाजपा भी कुछ राज्यों में तो लगभग दस वर्षों से राजकाज कर रही है। पर कोई पूरे विश्वास से यह नहीं कह सकता कि जो हुआ है वह हिन्दुत्व या राष्ट्रवादी विचारधारा का परिणाम है। हां, सभी जगह उन विचारधाराओं की झलक दिखाई जरूर पड़ती है, जो उस समय राजकाज कर रही होती है।

इससे यह तो साफतौर पर नहीं कहा जा सकता कि केवल वही विशेष विचारधारा विकास का आधार है और जो कुछ भी हुआ है वह उसी का परिणाम है। हुआ तो यह भी है कि प्राय: सभी समय में कार्य और व्यवहार में समिश्र विचार परिलक्षित होते रहे हैं। इस संदर्भ में पूरी दुनिया के विकास पर नजर डालें तो भी यही दृश्य नजर आता है। रूस, चीन तथा यूरोप के बहुत से देशों में साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा कुछ समय तक तो विकास का आधार रही पर बाद में विकास के लिए ही उन देशों ने अपनी विचारधारा का पल्ला छोड़कर उस विचार के मार्ग को अपनाया जिसकी वे आलोचना करते रहे थे और मानते रहे थे कि ब्रिटिश, अमरीका तथा कुछ अन्य देशों का पूंजीवादी विचार विकास का विरोधी है। इस समय तो एक तरह से माना जा रहा है कि पूरी

दुनिया ही लगभग पूंजीवादी विचार से प्रभावित होकर अपना विकास कर रही है। इस सबका तात्पर्य तो यही है कि विचार, व्यवहार तथा कार्य को प्रभावित तो करता है पर वह निरंतर और सदैव ही विकास का साथी नहीं रहता। उसमें परिवर्तन होता है। उसमें होता या हो रहा परिवर्तन, व्यवहार तथा कार्य के प्रभाव का परिणाम होता है। हां, इस परिणाम का पुन: विचार पर प्रभाव पड़ता है और उस पूर्व विचार में परिवर्तन होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि विचार से बंधकर या केवल उसके ही सहारे जो विकास किया जायेगा, वह न तो लोकप्रिय होगा और न संभवत: लोकहित में होगा। इसे हम, आप तथा नरेन्द्र मोदी के विचारों में आये परिवर्तनों से भी देख-समझ सकते हैं। दिल्ली के चुनाव परिणामों के संदर्भ में भी इसे समझा जा सकता है।

यह विमर्श इसलिए किया क्योंकि मीडिया इस विचारधारा के द्वंद में बहुत साफतौर से कहीं भी नजर नहीं आता है। कभी वह सब के साथ है और कभी किसी के साथ नहीं है, ऐसा उसके व्यवहार से लगता है। ऐसा संभवत: इसलिए लगता है कि उसकी अपनी कोई विचारधारा नहीं है या वह इन विचार-धाराओं में से किसी एक धारा का प्रवाही नहीं है। यह भी कहा जाता है, यदाकदा, मीडिया के मूल्य तो हों पर उसकी कोई एक विचारधारा नहीं होनी चाहिये। सबसे अधिक इसी बात पर जोर दिया जाता रहा है और मीडिया में आ रहे नये लोगों को भी यही बताया जाता रहा है कि मीडिया का अपना मूल्य तो हो पर विचार नहीं होना चाहिये। वह विचारों का प्रस्तुतकर्ता या विवेचक हो सकता है। इसे इस तरह से समझें। व्यवस्था, कार्यक्रम और लोगों के भवितव्य तथा भविष्य का न्यायपूर्ण तथा सुविधाजनक स्वरूप होता है विकास। विचार के बारे में कहा जाता है कि वह सामाजिक-राजनीतिक दर्शन में राजनीतिक, कानूनी, नैतिक, सौंदर्यात्मक, धार्मिक तथा दार्शनिक चिंतन और सिध्दांत की प्राविधिक प्रक्रिया है। विचारधारा का सामान्य आशय राजनीतिक सिध्दांत के रूप में किसी समाज या समूह में प्रचलित उन विचारों का समुच्चय है जिनके आधार पर वह किसी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संगठन, कार्य, कार्यक्रम को उचित या अनुचित ठहराता है। इसका आलोचना पक्ष भी है जो कहता है कि इस तरह के विश्वास का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता।

एक आलोचना यह भी है कि लोग और लोक-आकांक्षायें स्थिर नहीं होती हैं। वे समय, परिस्थिति, अनुभव तथा समेकित परिवर्तन के प्रभाव से प्रभावित होती हैं, जबकि विचारधारा प्राय: स्थिर तथा सरल रेखा में प्रवाहित होती है। सामान्यत: विचारधारा विशेष के अनुयायी प्राय: उस सत्य मानकर उसका अनुसरण करते हैं और उसके सत्यापन को भी आवश्यक नहीं मानते या समझते हैं, भले ही वे कुछ सिध्दांत और तर्क अपने पक्ष में प्रस्तुत करते हों। तर्क और सिंध्दांत तो लोगों के मन में आस्था, विश्वास पैदा करने के लिए होते हैं, जिनके सहारे, माना जाता है कि अनुसरणकर्ताओं की संख्या बढ़ती है। हाँ, यह सही है कि विचार, विचारधारा और व्यवहार, कार्यक्रम, आयोजनाएँ लोगों

में फलित, प्रतिफलित होकर एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। ऐसे में मीडिया को क्या करना चाहिये? वह निर्विचारी होकर विचारों का मंच बना रहे या किसी एक मजबूत या राजकाजी विचारधारा का संगी-साथी बन जाये अथवा किसी पराजित अथवा कमजोर पक्ष का पैरोकार बनकर विरोधी या आलोचक की भूमिका निभाये।

हमने अब तक आदर्शवाद, गांधीवाद, सर्वोदयवाद, मार्क्सवाद, समाजवाद, फासीवाद, अराजकतावाद, अराजवाद, कुलीनवाद, माओवाद, नक्सलवाद, सर्वाधिकारवाद आदि ऐसे कुछ वादों के बारे में सुना-पढ़ा-समझा और अनुभव किया है। सभी वाद प्राय: किसी राजनीतिक दर्शन से प्रभावित हैं या उनसे ही विकसित हैं और प्राय: राजनीतिक प्रबंधन के ध्येय से जुड़े रहते हैं। इन दर्शनों या विचारधाराओं को जब आकस्मिक या सुनियोजित समर्थन या अस्वीकृति मिलती है तब प्राय: उसकी व्याख्या पूरी तरह से वैज्ञानिक आधारों पर की जाती हो, यह संदेहास्पद है। फिर, व्याख्या घटना के बाद की स्थिति ही होती है। पत्रकारिता का तथ्य और सत्य प्राय: घटना के दौरान की स्थिति होती है और इसलिए उसे विचारधाराओं का केवल मंच होकर नहीं रहना चाहिये। उसे उन आधारों, अनुभवों, परिवर्तनों, आकांक्षाओं, तनाव और दबावों को बताना चाहिये जो विचारधारा या धाराओं पर प्रभाव डाल रहे होते हैं। इस मायने में वह केवल सूचनाओं का प्रस्तुतकर्ता या विचारधाराओं के विचारों का प्रस्तुतकर्ता ही नहीं होता है। उसकी विचारधारा लोक से संदर्भित और उसकी आकांक्षा से जुड़ी होती है। यह भी तो एक तरह का विचार ही है। यह विचार जो सतत अनुसंधान, पड़ताल और विवेचना के साथ होता है, हो रहा है, वह मीडिया की ही तो विचारधारा है जिसे वह अपने मूल्य के साथ रखे तो वह लोक के साथ जुड़ै रहता है और शेष सभी व्यवस्था के निकाय उसकी इस विचारणा के साथ अपने को संशोधित कर सकेगे। व्यवस्था तो उन्हीं राजनीतिक विचारों की जिम्मेदारी है।

****